P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-11* July- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

संस्कृत प्रशस्तियों का स्वरूप व प्राप्ति स्थान – एक पर्यवेक्षण

Nature and Place of Acquisition of Sanskrit Commendations

Paper Submission: 02/07/2020, Date of Acceptance: 21/07/2020, Date of Publication: 25/07/2020

माना राम चौधरी
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,
जयनारायण व्यास
विश्वविद्यालय, जोधपुर
राजस्थान, भारत

सारांश

संस्कृत प्रशस्तियाँ, व्यापकता के साथ उन सभी स्थलों पर प्राप्त होती हैं जहाँ पर हमें अन्य अभिलेखों की प्राप्ति हो सकती है। वस्तुतः प्रशस्तियाँ अभिलेखो का ही एक स्वरूप होने के कारण इनकी प्राप्ति का स्वरूप अत्यन्त ही व्यापक एवं विशाल है। यथा प्रशस्तियों के प्रारम्भिक विवरण में लिखा गया कि प्रशस्तियाँ किसी राजा द्वारा दिये गये दान के सन्दर्भ में लिखा गया प्रशंसात्मक अभिलेख ही है। ऐसे में राजा द्वारा, भूमिदान, मन्दिर निर्माण, कूप निर्माण, वापी निर्माण, तड़ाग निर्माण आदि के साथ ही लिखे गये अभिलेख राजा के वंशावली की तथा दानदाता राजा के स्वयं की प्रशंसा में लिखा हुआ होता हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो प्रशस्तियों की प्राप्ति स्थल अत्यन्त ही व्यापक परिसर हो जाता है।

प्रशस्ति लेख किसी मन्दिर, तड़ाग, वापी, कूप आदि के निर्माता द्वारा अपने और अपने वंश की कीर्ति को चिरस्थायी बनाने के लिये उत्कीर्ण करवाये जाते थे अथवा किसी राजा या राजपुरुष की स्मृति में स्वतन्त्र रूप में किसी कवि या लेखक द्वारा लिखित होते थे। ऐसे अभिलेख प्रशस्ति कहलाते हैं। क्योंकि इनमें निर्माता के वंश के यशोगान के साथ उस वंश के अन्य पुरुषों की उपलब्धियाँ भी पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा निर्माता या प्रशासक वंश की वंशावली भी लिपिबद्ध की जा सकती हैं प्रतिहार बाउक के जोधपुर अभिलेख वि.सं. 894 में जहाँ मण्डोर के प्रतिहारों की उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है, वहाँ उससे उनकी वंशावली भी प्राप्त हो जाती है।

Sanskrit citations are widely received at all the places where we can find other inscriptions. In fact, the commendation being a form of records, the nature of their receipt is very wide and vast. In the initial description of the commendations, it was written that the commendation is an appreciative record written in respect of the donation made by a king. In such a situation, the inscriptions written by the king along with land donation, temple construction, vape building, vapi construction, etc. are written in the praise of the king's genealogy and the donor king himself. From this point of view, the place of receiving commendations becomes a very extensive campus.

Commendation articles were engraved by the creator of a temple, Tadag, Vapi, Kupa etc. to perpetuate the fame of himself and his dynasty or were written independently by a poet or writer in the memory of a king or king. Such inscriptions are called commendations. Because in them Yashogan of the lineage of the creator, along with the achievements of other men of that dynasty are also found. In addition, genealogies of producer or administrator dynasty can also be written by them, Jodhpur records of Pratihar Bauk no. In 894, where details of the achievements of the Pratiharas of Mandar are obtained, their lineage is also obtained from it.

मुख्य शब्द : प्रशस्तिया, वंशावली, प्रशंसा ।
Prashastiya, Genealogy, Praise.

प्रस्तावना

इतिहास व संस्कृति के प्रमुख स्रोत, तत्कालीन साहित्य, शिलालेख, ताम्रपत्र, प्रशस्तियाँ, अभिलेख, वंशावलियाँ , पूर्व में लिखे गये इतिहास आदि होते हैं। इन प्राथमिक स्रोतों के आधार पर ही इतिहास लिखा जाता रहा है । परन्तु संस्कृत के दृष्टिकोण से अभिलेखों, दानपत्रों, प्रशस्तियों, का केवल इतिहास के प्ररिप्रेक्ष्य में ही महत्त्व नहीं है, अपितु इनमें हमारी संस्कृति, परम्परा, उत्सव, साहित्यक, कला, सामाजिक संघटना आदि कई विषयों का ज्ञान निहित होता है

उत्तर पश्चिमीय राजस्थान के मारवाड़ में प्राप्त होने वाली अभिलेखीय सामग्री के संकलन का श्रेय गुरू यतिज्ञानाचन्द्र, डॉ. दत्तात्रेय देवदत्त, रामकृष्ण भण्डारकर श्री नानूराम, ब्रह्मभट्ट राव, श्री शिवनाथसिंह, मुंशी श्री देवीप्रसाद, श्री रामकर्ण आसोपा, श्री डॉ.विश्वेश्वरनाथ रेऊ आदि को है। इनसे प्राप्त जानकारी के आधार पर ही पाश्चात्य जिज्ञासु टेस्सीटोरी, किलहार्न, आदि ने भी इस दिशा में कार्य किया। मारवाड़ के अभिलेखों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने का गौरव मुंशी देवीप्रसाद को प्राप्त है। उन्होंने मारवाड़ के प्राचीन शिलालेख नामक पुस्तक ई.सन् 1894 में सर्वप्रथम प्रकाशित की थी। इसी क्रम में मारवाड़ के श्री दुर्गालाल माथुर ने सन् 1967 में यहाँ के चौहान अभिलेख–राजस्थान के चौहान अभिलेख या राजस्थान के प्रमुख अभिलेख' ग्रन्थ प्रकाशित किये थे। जितने भी अभिलेख प्राप्त होते हैं उनमें दानदाता राजा की प्रशंसात्मक दो अथवा तीन पंक्तियाँ होती ही हैं। यही उनके प्रशस्ति विलेख का रूप है। यद्यपि हम अभिलेखों की दृष्टि से देखें तो उनके लेखन का आधार कई प्रकार से विभाजित है। यथा–

1. प्रतिष्ठा–अभिलेख जो कि मन्दिर, मूर्ति, तोरण, दुर्ग, कूप, वापी, आदि के निर्माण के समय में लिखवाये जाते हैं।
2. मूर्ति पादालेख और चरण चतुष्किका के अभिलेख
3. स्मारक लेख जो कि जुझार आदि के लिये लिखे जाते हैं।
4. सती–लेख
5. प्रशस्ति–लेख किसी राजा, राजपुरुष, राजवंश के उद्भव विकासक्रम व कार्यों की प्रशंसा और उनकी उपलब्धियों का वर्णन
6. जीर्णोद्धार–अभिलेख
7. गोवर्धन स्तम्भ लेख और कीर्तिस्तम्भलेख
8. विजय–अभिलेख
9. घोषित राजाज्ञा–अभिलेख
10. गदर्भोत्तर कुत्सा अभिलेख अथवा निषेधाज्ञा
11. भूमिदान के अभिलेख
12. सुरभि से अंकित गोचर अभिलेख
13. यात्रा विषयक लेख
14. पत्राभिलेख आदि।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रशस्तियों पर निहित इस शोधपत्र में न केवल संस्कृत शोध छात्रों के लिए अपितु, अन्यविषयों के छात्रों, शोधार्थियों व सामान्यजनों के लिए प्रशस्तिग्रन्थों, पाण्डुलिपियों के अध्ययन व संरक्षण का महत्त्व प्रदान करेगा। इसके द्वारा प्रशस्तिशिलालेखों अभिलेखीयसामग्रियों के प्रति नवीन विचारधारा का प्रणयन होगा।

विषय विस्तार

पाषाण प्रशस्तियाँ (कूप प्रशस्ति, वापीप्रशस्ति, सरोवरप्रशस्ति)

भारतीय जनमानस अपने प्राचीन वेद, स्मृति व पुराणों में निहित सनातन धार्मिक परम्परा के अनुसार ही जीवन यापन करता है। भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार राजा व प्रजा दोनों ही परस्पर पूरक हैं। राजा वही कार्य करता है जिससे प्रजानुरंजन हो सके। उत्तररामचरित में एक स्थल पर राम कहते है कि **प्रजानुरंजनाय सीतां अपि मुंचतो न मे व्यथा"** प्रजानुरंजन के लिये अत्यन्त प्रिय सीता को भी त्यागना पड़े तो मैं उसे त्याग सकता हूँ। ऐसे में प्रजा के लिये कूप, वावी, सरोवर का निर्माण करना राजाओं व सम्राटों के लिये आवश्यक कर्त्तव्य था। इसका द्वितीय पक्ष है कि राजा स्वयं भी धर्मशास्त्रानुसार पुण्यादि कार्यों का करना चाहता था। ऐसे में राजा के द्वारा दो प्रकार के कर्मों का सम्पादन करना आवश्यक था। इष्ट कर्म तथा पूर्त कर्म, इष्टकर्म के अन्तर्गत श्रौत कर्मों का सम्पादन करता तथा पूर्त के अन्तर्गत धर्मशाला बनवाना, कूप, वापी, सरोवरादि जलस्रोतों का निर्माण करवाना, मार्गों का दृढ़ीकरण व मार्ग के दोनों ओर वृक्ष लगवाना, उद्यान विकसित करना आदि।

प्राचीन काल में लेखन की परम्परा का विकास भारत में सहस्राब्दियों पूर्व हो गया था। यद्यपि आधुनिक इतिहासकार पाश्चात्याभिमतानुसार इस तथ्य को अस्वीकार करते हैं। तथापि इसके खण्डन के सन्दर्भ में उनके पास भी कोई प्रमाणिकता प्राप्त नहीं होती। ऐसे में परम्परा जो सिद्धान्त है कि भारत में लेखन व लिपि का युग अनादि है उसे ही स्वीकारना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अतः इन प्रशस्ति सम्बन्धी अभिलेखों को विभिन्न आधारों पर लिखा जाता रहा है। जिसमें शिलाखण्ड, ताम्रपत्र, कपासपत्र, भोजपत्रादि। जलस्रोतों के निर्माण के उपरान्त उनके निकट एक स्तम्भ स्थापित करने की परम्परा हमें प्राचीन काल के जलस्रोतों के सन्दर्भ में दिखाई देती है। बहुधा इन्हीं स्तम्भों पर अथवा जलस्रोत की भित्तियों पर यह प्रशस्ति अभिलेख पाये जाते हैं।

वापी अभिलेख के उद्धरण

वापी अभिलेख भी पाषाण खण्ड पर ही उत्कीर्णीत होते हैं। मण्डोर में एक प्राचीन वापी (बावड़ी) पर टंकित है। मण्डोर रेल्वे स्टेशन के सामने, पहाड़ी के नीचे, मण्डोर (जोधपुर) प्रस्तुत अभिलेख के प्रारम्भ में गणेश के स्थान पर शिव को नमस्कार करके पाशधर–प्रचेता (वरुणदेव) की तथा पुरुषोत्तमनाथ (विष्णु) की प्रार्थना करने के पश्चात् यशः खनि (यश की खान) स्वादिष्ट और विपुल जलवाली उपर्युक्त वापी का वर्णन किया गय हो। चणक सूनु (पुत्र) माधु नामक धनिक (सेठ) के दिग्दिगन्तों से धन का अर्जन करके आयु को चंचल (अस्थिर) और धन का सार रहित (निस्सार) तथा यश को स्थिर (अमर) समझते हुये सरोवर की तरह यश की खान इस वापी का वि.सं. 742 का है–

मूलपाठ

1. ओं नमः शिवाय।.....रोद्र.....म्.....सर्वाम्भसामधिपति....प्रघ. ....।
2. वो सुराणां। श्रीमत्सुधा धवल हेम–विमानवर्ती देवः सदा जयति पाशधर–
3. प्रचेता अविहत चक्र प्रसरो विक्रमाकान्त सकल बलि राज्यो(ज्यः)। दूर निराकृत
4. नरक स्स जयति पुरूषोत्तम ना(थः)रा। चण्णक सूनु र्म्माधू गुणिना मग्रेसरो भवति
5. बहि इखरकाख्येक य ता" यो यशया वित्ति निचयेन।।3।। अप्य.....तनु....

6. अविषमदृष्टिर्ल्लोके तथापितन्वीश्वरं सिद्ध।।4।।
   आयुश्चल धनम सारमिति–
7. ह पूर्व मत्वा स्थिरं यशः पृथिव्यां स्वादु प्रकीर्ण सलिला सुमनोहर(ां)
8. सेयं वापी निपांनमिव सो (स) यशसां चखनि।।5।।
   संवत्सर सप्तसु द्वाचत्वा
9. रिं स्वा (शा) धिकेषु (द्वाचत्वा रिंशदधिकेषु) यातेषु।।[1]

एक अन्य वापी अभिलेख राजकुमारी रूपादेवी का बावली अभिलेख जो कि वि.सं. 1340, ज्येष्ठवदि सप्तमी, सोमवार का है। जिसे आंग्ल दिनांक में बदलने पर वह 8 मई 1284 का है। यह बुरडा की बावली के नाम से विख्यात है। इसका विषय इस प्रकार है कि चौहान (सोनगरा) समरसिंह देव का पुत्र महाराज उदयसिंह औ रतत्पुत्र चोहान चच्च देव हुआ। चच्चदेव की पत्नी महारानी लक्ष्मी देवी के गर्भ से राजकुमारी रूपादेवी का जन्म हुआ। रूपादेवी और तेजसिंह (गहलोत) के संयागे से क्षेत्रसिंह का जन्म हुआ। उपर्युक्त राजकुमारी रूपदेवी ने वि.सं. 1340 ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी सोमवार को स्वयं द्वारा निर्मित बावड़ी की प्रतिष्ठा उक्त कालावधि में करवायी। यह कार्य महाराजाकुल श्री सामन्तसिंह देव की समय में सम्पन्न हुआ। इस अभिलेख में महाराजकुल उदयसिंह के पुत्र चच्चदेव की पुत्री रूपादेवी और उसके पति तेजसिंह का उल्लेख है। इसका वैशिष्ट्या यह है कि इस समय राजकुमारियाँ और रानियाँ वापी, सरोवर, कूप, मन्दिर आदि बनवाती हुई जनहित के सामाजिक और धार्मिक कार्य सम्पन्न करती थीं। सार्वजनिक हित का प्रत्येक कार्य राजा द्वारा नियुक्त प्रमुख पंच के साक्ष्य में वैद्य माना जाता था। यही इस लेख का मुख्य कथ्य है। मूलपाठ की कुछ पंक्तियाँ निम्न प्रकार से हैं–

पंक्ति 10–11 "रूपादेवी स्वकुल तिलका–कारिणी पुत्रिकस्य लक्ष्मीदेव्या उदर सरसि प्रोल्लसद "राजहंसी"
पंक्ति 19 "तन्नियुक्त श्री जाशादि पंचय प्रतिपत्तावेवं काले वर्तमाने देव्याः श्री रूपादेव्या वापिकायाम् (191) प्रतिष्ठिता।। [2]

इसी प्रकार का एक अभिलेख हमें साँचोर के चौहान वरजांग का वापी स्तम्भलेख प्राप्त होता है। यह अभिलेख वि.सं. 1510 फाल्गुन वदि एकादशी शुक्रवार का है। परन्तु यह अभिलेख संस्कृत भाषा में नहीं है वरन् संस्कृत के कुछ शब्दों के उपरान्त गुजराती आदि भाषाओं में मिश्रित है।

कूप प्रशस्ति

जिस प्रकार हमें वापी के निकट अभिलेख प्राप्त होते हैं जो कि निर्माण करने में व्यय करने वाले के कुलवंश आदि की प्रशंसा के साथ उसके निर्माण आदि से सम्बन्धित होता है। वैसे ही प्रशंसा परक आलेख कूप के निर्माण के साथ भी प्राप्त होते हैं। ऐसा ही कुण्ड से सम्बन्धित प्रशस्ति हमें जोधपुर के निकट मण्डोर क्षेत्र में स्थित 'पंचकुण्ड' नामक प्राचन तीर्थ के निकट प्राप्त होता है। यद्यपि ये अभलेख रक्तपाषाण शिला पर प्राप्त होता है जो कि अब जोधपुर संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। यह अभिलेख वि.सं. 1213 का है। इसमें राठौड़ भुवगिण के पुत्र सलखा राव की तीन रानियों सलखा देवी चौहान, 2–सांवलदेवी सोलंकिनी, 3–सेजण देवी गहलोत का सती के रूप में नामोल्लेख प्राप्त होता है। इसकी भाषा संस्कृत नहीं है। तथापि इसके प्रारम्भि अंश इस प्रकार हैं– संवत् 1213 (ज्येष्ठ) सु–1 वारो र (वि) सला राठउ (ड) भुवगिण पुत्र सलखदेवी चाहुया(वा)णी, बड़ी वितीक (द्वितीयक) सांवलदेवि सोलंकणी त्रुतीक (तृतीयक) सेजण देवी गुहिलोतणी....।[3] इस प्रकार यह कुण्ड अभिलेख तथापि इनके सती होने का उल्लेख मिलता है उससे यह सती लेख भी कहा जा सकता है। एक अन्य अभिलेख हमें हरिदासियों के कूप का अभिलेख प्राप्त होता है। यह अभिलेख या प्रशस्ति वि.सं. 1624 का है यह एक सामान्य अभिलेख है इसमें किसी की प्रशस्ति नहीं लिखी हुई है तथापि कूप पर प्राप्त होने के कारण यहाँ इसका स्वरूप दिया जा रहा है। इसका मूलपाठ निम्न प्रकार है–

1. श्री रामचन्द्रायः नमः
2. सिधि श्री गणेशाय नमः। अथ संवत्सरे
3. स्वस्ति आभावासी विक्रमादित्य राज्ये संवत्
4. 1624 वर्षे साके (1489) चैत्र शुदि–1 शुभदिनेविश्वेश्व
5. श्र तस्य पुत्रः प्रयागदासः तस्य पुत्रः हरीदास तस्य पुत्रः
6. अग्खंज छै बिहाणी संवत्

इस प्रकार इस अभिलेख का प्रारम्भ संस्कृत में है। तथा शेष का भाग अन्य भाषा में दिखाई देता है। जोधपुर में वि.सं. 1787 में एक कूप का निर्माण हुआ इस कूप की प्रतिष्ठा महाराजा श्री अभय सिंह जी तथा महाराजकुमार श्री रामसिंहजी के समय हुई थी। इसका मूलपाठ अंशतः निम्न प्रकार है–

1.समत् 1787 प्रथम भादो श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री अभयसिंहजी महाराज कुमार री रामसिंहजी [4]

एक अन्य कूप की प्रशस्ति भी प्राप्त होती है। यह कूप हरिदासियों के कूप के नाम **से** प्रसिद्ध है। यह वि.सं. 1624 चैत्र सुदि प्रतिपदा का है। कूप की पश्चिमी भित्ति पर यह अभिलेख प्राप्त होता है। यह नागौर जनपद के आभानगरी वर्तमान में डीडवाना विषय के अन्तर्गत है। इसका मूल पाठ निम्न प्रकार है।

1. श्री रामचन्द्रायः नमः।
2. सिधि श्री गणेशाय नमः। अथ संवत्सरे
3. स्वस्ति आभावासी विक्रमादित्य राज्ये संवत्
4. 1624 वर्षे साके 1489 चैत्र शुदि 1 शुभदिनेविश्वेश्व
5. र तस्य पुत्रः प्रयागदासः तस्य पुत्र हरीदास तस्य पुत्रः
6. अग्खंज छै बिहाणी संवत्....

सरोवर प्रशस्ति

यथा पूर्व में कहा गया है कि जलस्रोतों के निर्माण के साथ ही उनके सम्बन्ध में अभिलेखों की स्थापना की भी परम्परा रही है। यह अभिलेख जलस्रोत निर्माता की प्रशंसा में लिखे जाते रहे हैं।

शिलाखण्ड

विक्रम संवत् से शताब्दियों पूर्व तथा पश्चात् चन्द्रगुप्त, राष्ट्रकूट, पहल्लव, आदि कई राजवंशों के द्वारा समय–समय पर विभिन्न उद्देश्यों के लेकर दान की प्रथा रही। ये दान, भूति, मन्दिर, स्वर्णादि धातु, गाय, अमूल्य वस्त्रादि से सम्बन्धित रहा है। ऐसे में दान इसमें भी विशेषकर, भूमिदान, मन्दिर निर्माण, कूप निर्माण, सरोवर

उत्खनन व निर्माण आदि के परिप्रेक्ष्य में दानाभिलेख लिखवाये जाते थे। ये अभिलेख राजा की आज्ञा से लिखवाये जाने के कारण 'शासन' कहे जाते थे। इनके लेखन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में स्मृतिकारों ने स्पष्ट किया है कि इनमें राजा अपने पूर्वजों के धर्म, वीरता, प्रजानुरंजन सम्बन्धी कार्यों की एवं स्वयं के श्रेष्ठ कार्यों का उल्लेख करवाये। इसे ही प्रशस्ति कहा गया है। अतः विभिन्न शिलाखण्ड जो कि मन्दिरों के मुख्य प्रवेशद्वारों पर, कूप के स्तम्भ पर वापी की भित्तियों पर खुदवाये जाते थे। इन शिलाओं को प्रधान शिला कहा जाता था। पुष्यमित्रशुंग का एक लेख अयोध्या से प्राप्त हुआ है जिसमें उसके जीवन की मुख्य घटनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। यह लेख द्वार की ऊपरी चौखट पर खोदा गया था। इसी क्रम में वि. की प्रथम शताब्दी में शक व कुषाण नरेशों ने भी प्रशस्तियाँ खुदवाई थीं। इनमें सर्वाधिक प्रधान विलेख महाक्षत्रप रुद्रदामन का है। जो कि 207 वि.सं. में उत्कीर्णन किया गया था। यह विलेख अशोके के गिरनार वाले लेख के शिलाखण्ड पर ही उत्कीर्णीत है। यही लेख संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम गद्याभिलेख है जो कि साहित्य पर विभिन्न प्रकार से प्रकाश डालता है। इस अभिलेख में रुद्रदामन का सामाजिक व राजनीतिक जीवन का सम्पूर्ण इतिवृत्त लिखा गया है।

गुप्त वंश के शासन आरम्भ होन के उपरान्त अनेकानेक प्रशस्तियों के रूप में अभिलेखों के लिखने की परम्परा का शुभारम्भ दिखाई देता है। समुद्रगुप्त प्रथम ने प्रशस्ति टंकण का श्री गणेश किया। उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्विजीय ने भी शिलाखण्डों पर लेख उत्कीर्णन की परम्परा को अनवरत बनाये रखा। इस लेख में उनके वंश इतिहास है। अतः यह प्रशस्ति रूप में लिखा गया अभिलेख है। इन्हीं की वंश परम्परा में कुमार गुप्त प्रथम का मंदसोर का लेख तथा स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ का लेख प्रसिद्ध है। छठी सदी में राजा यशोवर्मन की प्रशस्ति भी इसी श्रेणी में कही जा सकती है। मौखरि राजा ईशान वर्मा की प्रशस्ति अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमे मौखरि इतिहास के अतिरिक्त मालव सम्वत का उल्लेख भी दिखाई देता है। पूर्व के गुप्त नरेशों के लेखों में अपसद का लेख मुख्य माना जाता है।

पूर्व मध्य काल में जो कि छठी शताब्दी विक्रम से 11वीं शताब्दी विक्रम की है। इस काल में भारत में कई सम्राटों व राजवंशों का उदय दिखाई देता है। वस्तुतः यदि उन राजवंशों की वंशावली को देखा जाय तो वे पूर्व के मुख्य राजवंशों के ही अन्वय में दिखाई देता है। तथापि इनके कारण इन नये राजाओं ने भी अपने पूर्वजों व सनातन परम्परा के अनुसार वे सभी प्रकार के इष्टापूर्त कर्मों का सम्पादन किया। जिसके फलस्वरूप कूप, वापी, सरोवर, मन्दिर निर्माणादि कई जनोपयोगी कार्यों के द्वारा प्रजा का रंजन किया। अतः प्रत्येक निर्माण के समय तदनुसम्बन्धी प्रशस्तियाँ भी लिखी गईं। जैसा कि याज्ञवल्क्य, नारद, मनु आदि ने राजधर्म प्रकरण के अन्तर्गत प्रशस्ति लिखने की विधा का विवरण देते हुये कार्पास पट्ट, शिला पट्ट, ताम्रपट्टादि धातुओं पर लिखवाने के लिये कहा है। अतः उस काल के न केवल शिला पट्ट अपितु, ताम्रपट्ट, स्तम्भों पर उत्कीर्णित कई प्रशस्तियाँ हमें प्राप्त होती हैं।

स्तम्भ–प्रशस्ति

शिलाखण्ड के पश्चात् प्रस्तर का द्वितीय रूप स्तम्भ है जिस पर लेख अथवा प्रशस्ति उत्कीर्णीत की जाती थीं। यह प्रथा भारत में अनादिकाल से अद्यापि प्रचलित है। आज भी किसी भवन के उद्घाटन के समय शिलापट्ट का ही अनावरण किया जाता है। प्राचीनकाल में स्तम्भों पर लिखे गये अभिलेख अथवा प्रशस्तियाँ राजा अपने कार्यों का जनसामान्य तक पहुँचाने के उद्देश्य से करता था। अशोक के द्वारा लिखवाये गये शिलालेखों की ही भांति अशोक ने कई स्तम्भ प्रशस्तियाँ भी स्थापित करवाईं। इन स्तम्भों पर राजाज्ञा की घोषणा की जाती थी। राजस्थान तथा मारवाड़के स्मारक स्तम्भों में गोवर्द्धन–स्तम्भों का विशेष महत्त्व है। ऐसे स्तम्भ प्रारम्भ में गायों की रक्षा करते हुये बलिदान हुए वीर पुरुषों की पुण्य–पवित्र स्मृति में खड़े किये जाते थे। किंचित् कालोपरान्त ये विदेशी विधर्मी क्रूर आक्रान्ताओं से लड़कर वीरगति प्राप्त करने वाले वीरों की पावन स्मृति में बनने लगे। मारवाड़ में बीठन (नागौर) में एक सरोवर के निकट वि.सं. 1002 के तीन गोवर्द्धन–स्तम्भ प्राप्त हुये। पोकरन में परमार शियपुत्र धिन्धिक और एक अज्ञात गहलोत के वि. सं. 1090 के दो स्तम्भ बालकनाथ मन्दिर के परिसर में खड़े हैं। इनमें से द्वितीय लेख संवत् विहीन है। पाल (यशोवीरपल्ल, जोधपुर) में भी वि.सं. 1218 और 1242 के दो गोवर्द्धन स्तम्भ प्राप्त हैं। इनमें से अन्तिम में धंधल जातीय खुख के पौत्र सोढा के पुत्र धंधा की मृत्यु का उल्लेख है। इसका स्मारक गोवर्द्धन मोहिया ने बनवाया, माघ सुदि 1 शुक्रवार को। भाडियावास (पचपदरा) का एक गोवर्द्धन स्तम्भ वि. सं. 1254 श्री रामवल्लभ सोमानी द्वारा कृत शोध की नवीनतम उपलब्धि है। देवका (शिव, तहसील) के प्रतिहार–युगीन सूर्यमन्दिर के प्रांगण में भी एक ऐसा स्तम्भ खड़ा है। इसी प्रकार के कई स्तम्भ बाड़मेर–जैसलमेर राजमार्ग पर शिव गूंगा और देवका के निकट ऐसे एकल शिलांकित स्मारक–स्तम्भ भी देखें हैं। पश्चिमी राजस्थान के इन स्मारक स्तम्भों में लोद्रवा का वि.सं. 970 ज्येष्ठ शुक्ला 15 का, रामधर के पुत्र भद्रक द्वारा निर्मित स्मारक स्तम्भ सम्भवतः सर्वाधिक प्राचीन है।

मारवाड़ में शिव–गूंगा, बीसूकलां, पोकरन, मेड़ता (फलौदी) मेड़तारोड, पचपद्रा, नाडोल, और आबू के माग्र में और उनके आस–पास ऐसे स्तम्भों का अन्वेषण करना चाहिये। आक्रमणकारीयों से आहत प्राणोत्सर्गकारी बलिदानी वीरों के रक्त से स्नात ये पवित्र स्मारक अवशेष हैं, जो हमारी राष्ट्रीय अस्मिता, बलिदानी परम्परा और विस्मृत आत्मगौरव के उज्ज्वल स्मारक और प्रतीक है। इन गोवर्द्धन स्तम्भों पर गणपति, सूर्य, देवी (शक्ति चामुण्डा), शिव और गोवर्द्धन श्रीकृष्ण (विष्णु) का उत्कीर्णन पाया जाता है। प्रायशः तालाबों, वापियों और कुँओं के निकट इसी प्रकार के कई स्तमी प्राप्त होते हैं। जोधपुर में गुलाब सागर पर भी ऐसा ही एक स्तम्भ अच्छी स्थिति में प्राप्त होता है।

कीर्तिस्तम्भ

इसी प्रकार मारवाड़ में यत्र–तत्र कीर्तिस्तम्भ भी प्राप्त होते हैं। ये किसी राजा या वीरपुरुष द्वारा किये गये पुण्य कार्यों या विजय के उपलक्ष्य में प्रशंसापरक विलेख के साथ स्थापित किये जाते थे। इन पर उल्लिखित लेख में उनकी यशोगाथा आंशिक रूप से अंकित होती थी।

1. प्रतिहार कुक्कुक ने वि.सं. 918 चैत्र सुदि 2 बुधवार को घटियाला (रोहिंसकूप) में एक कीर्ति स्तम्भ स्थापित किया। इसी तरह उसने द्वितीय कीर्ति स्तम्भ मण्डोर में स्थापित किया था। यह सूचना घटियाला के जैन मन्दिर से प्राप्त एक प्राकृत लेख की संस्कृत छायानुवाद में प्राप्त होती है। उसमें कथित है कि उसने उक्त स्थानों पर "यश के पुंज की भांति दो कीर्ति स्तम्भ स्थापित किये", जिनमें से एक मण्डोर का कीर्तिस्तमी तो सम्भवतः अब तक नष्ट हो चुका है, पर घटियाला का कीर्तिस्तम्भ विद्यमान है, जिसमे क्रूर आभारजन को पराजित करके कक्कुक ने वहाँ एक हट्ट यानि कि व्यापारिक स्थल की स्थापना की थी। कक्कुक विद्वान् और वीर दोनो था, उसने त्रवणी वल्ल, माड, आर्यदेशों और गुर्जरत्रा में महाख्याति प्राप्त की थी। उसके कीर्तिस्तम्भ के लेख में लिखा है कि "उस कुलदीपक वीर कक्कुक ने यषःस्तम्भ की तरह यह उन्नत कीर्तिस्तम्भ उत्तम्भित किया– श्रीमत्कक्कुक वीरेण कुलदीपेन धीमता।

अयुमुत्तम्भित स्तम्भों यशस्तम्भ इवोन्नतः।।[5]

उसकी विद्वत्ता के विषय में भी उसके द्वारा एक स्वयंकृत श्लोक उद्धृत है–"ओ योवन, विविधैर्भोगैर्मध्यमं च वयः श्रिया।

वृद्ध भावश्च धर्मेण यस्य याति स पुण्यवान्

अर्थात् वह व्यक्ति पुण्यवान् है, जिसका यौवन विविध पदार्थों का उपभोग करते हुये और मध्यवय श्री सम्पन्नता से तथा वृद्धावस्था धर्माचरण करते हुये बीतता है।

द्वितीय कीर्तिस्तम्भ राठौड़ कालीन प्रथम कीर्तिस्तम्भ है, जो कायलाना नामक स्थान पर मोकल की वाडी से कुछ पूर्व में देखा गया था। वह राव रणमल के भ्राता रणधीर चुण्डावत का था। उस पर निम्न सूचना अंकित बतलाई गयी है। यद्यपि यह कीर्ति स्तम्भ क्षेत्रीय भाषा में तथापि यह उनकी उपलब्धि का विवरण है।

तृतीय कीर्तिस्तम्भ लोक देवता धांधल के पुत्र पाबूजी राठौड़ का, वि.सं. 1515 भादवा वदि ग्यारस बुधवार का है जो देवलदे नामक चारण महिला की गायों को जिंदराव खींची से मुक्त करवाने के लिये वरवेश में इस स्थल पर कीर्ति शेष हुये। पाबूजी की स्मृति में कोलू गाँव में राव सात के शासन काल में धांधल खीमड़ के पौत्र व शोभा के पुत्र सोहड ने यह मूर्ति युक्त कीर्ति स्तम्भ बनवाया।

चतुर्थ जोधपुर के सूरसागर नामक स्थान पर महाराजाधिराज श्री अजीतसिंहजी के समय का वि.सं. 1765 पौष शुक्ला सप्तमी का दीर्घाकार कीर्तिस्तम्भ स्थापित है। इस पर पूरी वंशावली लिखी हुई है। यह पाषाण प्रशस्ति का आदर्श उद्धरण है। यह संस्कृत में है। और उसमें अजीतसिंहजी की उपलब्धियेां का वर्णन भी प्राप्त होता है। तथा उनकी मातृराज्ञी का नाम अतिसुखदेवजी देवड़ी भी उल्लिखित है।

निष्कर्ष

इन अभिलेखीय प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया जाता है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति अति प्राचीन हैं। अतः प्रत्येक इतिहास पुरुष के द्वारा स्वसाम्राज्य विस्तार के साथ स्थान–स्थान पर शिलालेख प्रशस्तियों व प्रशस्तिग्रन्थों का लेखन करवाया। इनमें हमारी संस्कृति, परम्परा, उत्सव, साहित्यक, कला, सामाजिक संघटना आदि कई विषयों का ज्ञान निहित होता है

अंत टिप्पणी

1. *राजस्थान के अभिलेख, भाग–1, पृ–6–7*
2. *राजस्थान के अभिलेख, भाग–1, पृ–242, एपिग्राफिक ऑफ इण्डिया, भाग–2, पृ. 312–13*
3. *राजस्थान के इतिहास के स्रोत,डॉ. श्री गोपीनाथ शर्मा, पृ. सं. 89–90*
4. *तापड़िया बेरा, जोधपुर*
5. *कक्कुक का कीर्तिस्तम्भ, श्लोक संख्या–5*